# वैदिक ईश्वरवाद और आधुनिक विज्ञान

## सभा के सम्बन्ध में आर्य जगत् के अन्तराष्ट्रीय मासिक पत्र सार्वदेशिक अप्रैल १९६० की सम्मति

आर्य कुमार सभा किंग्जवे दिल्ली (रजि०) कुमारों को आर्य बनाने का स्तुत्य कार्य कर रही है।

इस सभा की स्थापना २४ अप्रैल १९४९ को श्री इकबाल राय जी द्वारा हुई इसके वर्तमान सदस्य ११८ हैं और विजयनगर तथा हडसन लाईन में इसकी दो शाखायें लगती हैं। सभा का पुस्तकालय तथा वाचनालय है तथा जीवन संदेश नामक मासिक पत्रिका निकलती है जो टाईप होती है। सभा की ओर से आर्य धमार्थ चिकित्सालय सफलता पूर्वक चल रहा है। प्रारम्भ से ही कुमारों के यज्ञोपवीत संस्कार पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यज्ञोपवीत रहित कोई भी कुमार सभा का अंतरंग सदस्य नहीं बन सकता। नवयुवकों के बौद्धिक तथा चारित्रिक विकास के लिए समय-समय पर वाद-विवाद और महापुरुषों की जयन्तियाँ धूमधाम से मनाई जाती तथा विद्वानों के भाषण होते हैं सभा की प्रेरणा से २३ सदस्य सेंट जान एम्बूलेंस की प्राथमिक परीक्षा पास कर चुके हैं जिनमें चार मैडिलीयन हैं। निर्धनों तथा विधवाओं की सहायता की जाती है। सभा ने अभी तक १३०९.२४ रुपये की सहायता की है। धार्मिक परीक्षायें होती हैं जिनका परिणाम बहुत सुन्दर रहता है तथा कथाओं द्वारा प्रचार की शैली को लोकप्रिय बनाया जाता है। सभा अपने प्रकाशन कार्य को विस्तृत तथा सुदृढ़ बनाने में प्रयत्नशील है। सभा ने विद्वानों द्वारा वेदों का महत्त्व, सोपान (तीन भाग), विश्व का प्रथम राष्ट्रीय गीत (पुरस्कृत) गुरु दक्षिणा, नभ के तारे, तथा स्वर्ण पथ आदि पुस्तकें प्रकाशित की हैं जो कि नवयुवकों के लिए लाभदायक हैं। कुमारों को समाज का उत्तम तथा श्रेष्ठ नागरिक बनाने के लिए जो भी प्रयत्न सम्भव हो सकता है सभा उसका आश्रय लेने में अग्रसर रहती है।

हम हृदय से इस सभा की उन्नति अभिवृद्धि की कामना करते हैं।

सम्पादक सार्वदेशिक

वामदेव आर्य

॥ ओ३म् ॥

श्रद्धा पुष्पांजलि का अठारहवां पुष्प

# वैदिक ईश्वरवाद तथा आधुनिक विज्ञान

लेखकः—

**महात्मा देवमुनि जी वानप्रस्थ**

( पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड )

आनन्द कुटीर, ज्वालापुर

प्रकाशकः —

**आ र्य कु मा र स भा**

किंग्ज़वे, दिल्ली ( रजि० )

द्वितीय संस्करण ११०० ] आर्यसमाजस्थापनादिवस [ मूल्य ३०पैसे

१९६९

ई वैदिक पुस्तकालय मुम्बई

# प्रकाशकीय

हमें पाठकों के सम्मुख श्रद्धा पुष्पांजलि के १८ वें पुष्प 'वैदिक ईश्वर वाद' और 'आधुनिक विज्ञान' को रखते हुए हर्ष व गौरव का अनुभव हो रहा है। महात्मा देवमुनि जी (पं० धर्मदेव वि० मार्तण्ड) जैसा विद्वान् अपनी अनुसन्धानात्मक रचना को प्रकाशित करने के लिये हमारे प्रकाशन विभाग को अवसर दे, इससे बढ़कर गौरव की और क्या बात हो सकती है ? हम महात्मा जी के अत्यन्त आभारी हैं।

आज हिन्दी भाषा को इस प्रकार का अनुसन्धानात्मक साहित्य पाने की भूख लगी हुई है। खेद से यह अभी भी स्वीकार करना पड़ता है कि वेद सम्बन्धी अनुसन्धानात्मक रचनाएं जितनी पाश्चात्य भाषाओं में है उतनी स्वदेशी भाषाओं में नहीं, और राष्ट्रभाषा के नाते हिन्दी की इस क्षेत्र में मन्द-गति को और भी तीव्रता से दूर करना है। इस आवश्यकता को समझते हुए, साहित्यप्रवाह में हम भी अपना यह लघु प्रकाशन प्रकाशपुंज समर्पित करते हुए हर्ष को प्राप्त होते हैं।

रचनाओं की न्यूनता के साथ एक कमी यह भी अनुभव होती है कि साधारण भारतीय को अभी साहित्य संचय का शौक नहीं। पाश्चात्य देशों के परिवारों में अपना एक छोटा पुस्तकालय होता है, हमारे यहाँ समर्थ व्यक्तियों में भी इस प्रकार का भाव कम पाया जाता है। इस कमी का एक कारण है निर्धनता। एक सामान्य भारतीय उत्तम रचनाओं को मंहगी होने के कारण क्रय नहीं कर सकता। इस विवशता को देखते हुए हमारे प्रकाशन विभाग का यही उद्देश्य है—उत्तम रचनाओं को सस्ते मूल्य पर छापना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पाठकों के सहयोग की आवश्यकता है। उसके लिए हम अपने प्रकाशन विभाग का परिचय देना उचित समझते हैं।

हमारी आर्यकुमार सभा, किंग्जवे, ने कुमारों की चरित्रोन्नति,

काए छापने का कार्य भी हाथ में लिया हुआ है। इसके साथ सभा का मासिक पत्र 'जीवन-सन्देश' भी टाइप होकर निकलता है।

जनता के सहयोग के लिये हम प्रकाशन विभाग के सदस्य दो प्रकार के बनाते हैं।

( १ ) साधारण सदस्य, जो १० रु० वार्षिक देकर सदस्य बनते हैं, उनके नाम वर्ष में एक प्रकाशन में छपते हैं। ( २ ) आजीवन सदस्य, जो एक बार १०० रु० देते हैं उनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में छपते हैं। हमारे आजीवन सदस्यों के नाम टाइटिल के तीसरे पृष्ठ पर देखें। हम अपने सदस्यों को प्रत्येक प्रकाशन भेज देते हैं, व उनकी सम्मतियों का स्वागत करते हैं।

अन्त में हम जनता से सहयोग याचना करते हुए, प्रार्थना करते हैं कि हमारे प्रकाशन विभाग के सदस्य बनें, व हमारे प्रकाशन मंगायें। इस रचना के सम्बन्ध में तो यह कहना भी आवश्यक है कि उच्चशिक्षा पा रहे विद्यार्थी इस पुस्तिका का अध्ययन अवश्य-मेव करें।

तिथि — ७-६-६०

कृष्णकुमार वि० वाचस्पति
प्रकाशन मन्त्री

## द्वितीय संस्करण

हमें वैदिक ईश्वरवाद और आधुनिक विज्ञान को द्वितीय बार प्रकाशित करते हुए हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। इस प्रकाशन के साथ हम अब तक ४३ पुस्तकें जनता को भेंट कर चुके हैं जिसकी ७१, ४०० प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि इस वेद प्रचार के कार्य में जनता का हमें पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहेगा जिससे हमें इस शुभ कार्य को चलाने में असुविधा न हो।

जगमालसिंह तवर
प्रकाशन मंत्री

२३-३-१९६६,

# लेखक के दो शब्द

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि मेरी लिखी 'वैदिक ईश्वर वाद और आधुनिक विज्ञान' नामक लघु पुस्तक का द्वितीय संस्करण आर्य कुमार सभा किंग्जवे देहली की ओर से प्रकाशित किया जा रहा है। इस संस्करण में पूर्व संस्करण के अतिरिक्त कुछ नये उदाहरण भी जोड़ दिये गये हैं जिन से आशा है इसकी उपयोगिता बढ़ जाएगी।

धर्मदेव वि. मा.

आनन्द कुटीर ज्वालापुर ( देव मुनि वानप्रस्थ )

१२-३-१९६६ २९ माघ २०२२ वि.

---

हाथ वही उत्तम जो पीड़ित की सहायता करे।
रोगियों की सेवा प्रभु को सच्ची पूजा है॥

## आर्य धर्मार्थ चिकित्सालय

### ( विजय नगर )

आर्य कुमार सभा ने जनता जनार्दन की सेवा के लिए एक धर्मार्थ चिकित्सालय खोला है, जो १२ मार्च १९५९ से भली-भाँति चल रहा है। इस शुभ कार्य में जिन महानुभावों ने दस रुपया व इससे अधिक राशि प्रदान की है उनकी नामावली इस प्रकार है: —

(१) नारंग वैलफेयर ट्रस्ट, दिल्ली १०) मासिक
(२) श्री हंसराज गुप्त नई दिल्ली १००)

इनसे पूर्व जिन महानुभावों ने दान दिया है उनकी सूची पूर्व प्रकाशन में दी जा चुकी है।

दानी महानुभावों से प्रार्थना है कि इस शुभ कार्य के लिए दान दे कर अपने धन को सफल बनायें।

जय देव

चिकित्सालय मन्त्री

। ओ३म् ।

# वैदिक ईश्वरवाद और आधुनिक विज्ञान

वेदों का निष्पक्षपात होकर यदि अनुशीलन करें तो हमें स्पष्ट ज्ञात होता है कि वेद एक ही ईश्वर की पूजा का प्रतिपादन करते हैं जो सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निराकार निर्विकार, अजन्मा, अविनाशी, न्यायकारी, दयालु, जगत् का कर्त्ता धर्त्ता और संहर्ता है।

**य एक इत् तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः। पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः॥**

ऋ० ६। ५१। १६

इस मन्त्र में स्पष्ट उपदेश है कि हे मनुष्य! (यः) जो (एकः इत्) एक ही (कृष्टीनां विचर्षणिः) सब मनुष्यों का ठीक-ठीक देखने वाला सर्वज्ञ (वृषक्रतुः) सुखों की वर्षा करने वाले कर्म वा ज्ञान वाला सर्वशक्तिमान् (पतिः जज्ञे) सबका स्वामी है। (तम उ स्तुहि) तू सदा उसकी स्तुति कर।

'एकः इत्' इन शब्दों से एक परमेश्वर की ही स्तुति और पूजा का भाव अत्यन्त स्पष्ट है। अन्य भी हजारों वेदमन्त्र इसी बात का उपदेश करते हैं जिनमें से विस्तारभय से केवल कुछ ही मन्त्रों का निर्देश किया जाता है—

ऋग्वेद ८।१।१ में कहा है:—

**मा चिदन्यद् विशंसत सखायो मा रिषण्यत।**
**इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत॥**

हे (सखयः) मित्रो! (मा चित् अन्यद् विशंसत) तुम किसी अन्य की विशेष स्तुति अर्थात् प्रार्थना उपासना न करो और इस

प्रकार अन्य की स्तुति प्रार्थना करके (मा रिषण्यत) मत दुःख उठाओ। सदा एकान्त में और (सचासुते) मिलकर किये हुए यज्ञों में (वृषणम्) सुख, शान्ति और आनन्द की वर्षा करने वाले (इन्द्रम् इत्) एक परमेश्वर की ही (स्तोत) स्तुति करो (च) और (मुहुः) बार-बार उसी के (उक्था शंसत) स्तुति वचनों का उच्चारण करो।

कितने स्पष्ट शब्दों में इस मन्त्र में एक परमेश्वर की ही स्तुति प्रार्थना तथा उपासना करने का विधान करते हुए, जो सुख शान्ति आनन्द का वर्षक है अन्यों की स्तुति का निषेध किया गया है, और उसे दुःखों का कारण बताया गया है, इस बात को पाठक ध्यान से देखें। 'इदि परमैश्वर्ये' धातु से इन्द्र शब्द बनता है अतः उसका अर्थ परमेश्वर है इसमें सन्देह का कारण ही नहीं। श्री सायणाचार्यादि पौराणिक भाष्यकारों को भी बहुत स्थानों पर इन्द्र का परमेश्वर यही अर्थ करने को विवश होना पड़ा है। उदाहरणार्थ—

**इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।**

**शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥**

इस सामवेद म० २९५ के भाष्य में सायणाचार्य ने लिखा है— "(इन्द्र) अनेक गुणविशिष्ट परमात्मन्।"

इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि यम, मातरिश्वा आदि शब्दों को देख कर कई लोग भ्रम में पड़ जाते हैं और समझने लगते हैं कि वेद अनेकेश्वरवाद के समर्थक हैं। किन्तु वेदों के निष्पक्षपात अनुशीलन से यह भ्रम सर्वथा दूर हो जाता है। ऋग्वेद के प्रथम ही मण्डल में यह स्पष्टतया बताया है कि—

**इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।**

**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥**

— ऋ० १।१६४।४६

अर्थात् (विप्राः) विद्वान् ज्ञानी लोग (एकंसद्)एक ही सत्स्वरूप परमेश्वर के विविध गुणों को प्रकट करने के लिए इन्द्र मित्र वरुण आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। परमैश्वर्य सम्पन्न होने से उस परमेश्वर को इन्द्र, सबका स्नेही होने से मित्र, सर्वश्रेष्ठ और अज्ञानान्धकार निवारक होने से, (वरणीयः, अज्ञानान्धकारनिवारको वा) वरुण, ज्ञानस्वरूप और सबका अग्रणी नेता होने से अग्नि (अञ्चुगति पूजनयोः), सबका नियामक होने से यम, आकाश या जीवादि में अन्तर्यामिरूपेण व्यापक होने के कारण मातरिश्वा आदि नामों से उस एक की ही स्तुति की जाती है।

यूरप के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् विचारक श्री अर्नेस्ट वुड् ने An English man defends Mother India नामक अपनी पुस्तक में इस मन्त्र का अनुवाद देते हुए यह टिप्पणी की –

In the eye of the Hindus, there is but one Supreme God. This was stated long ago in the Rigveda, in the following words:—'Ekam Sad vipraa bahudhaa vadanti' which my be translated "The sages name the One Being variously.

अर्थात् हिन्दुओं की दृष्टि में एक ही परमेश्वर है। इस सत्य का प्रतिपादन बहुत प्राचीनकाल में ऋग्वेद में 'एकंसद्विप्राः बहुधा वदन्ति' इन शब्दों द्वारा किया गया था, जिनमें स्पष्टया बताया गया है कि ज्ञानी एक ही परमेश्वर को अनेक नामों से पुकारते हैं।

यूरप के संस्कृतज्ञों में अपने समय में सबसे अधिक सुप्रसिद्ध प्रो॰ मैक्समूलर को भी जिन्होंने अपने पहले ग्रन्थों में वेदों को हीनोथी-इज्म अथवा अति-स्तुति देवतावाद का प्रतिपादक बताने का प्रयत्न किया था यह बात अपने अन्तिम ग्रन्थ The Six Systems of Philosophy में जो महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका

के पढ़ने के बाद लिखा गया था, स्वीकार करनी पड़ी कि वेदों में इन्द्र, मित्र, अग्नि, वरुण, मातरिश्वा, प्रजापति इत्यादि शब्दों द्वारा वस्तुतः एक ही ईश्वर का प्रतिपादन किया गया है जो अनन्त और निर्विकार है।

प्रो० मैक्समूलर के अपने शब्द निम्नलिखित हैं:—

Whatever is the age when the collection of our Rigveda Sanhita was finished, it was before that age, that the conception had been formed that there is but One, One Being neither male nor female, a Being rai ed high above all the conditions and limitations of personality and of human nature and nevertheless the Being that was really meant by all such names as Indra, Agni, Matarishwan and by the name of Prajapati—Lord of creatures.

"The Six Systems of Philosophy"

इसके मुख्य अंश का भाव ऊपर दिया ही जा चुका है।

प्रो० मैक्समूलर तथा यूरप के कई अन्य विद्वान् इस प्रकार स्पष्ट एकेश्वरवाद प्रतिपादक वेदमन्त्रों को ईसाइयत अथवा विकासवाद के पक्षपात के कारण पीछे की रचना बताने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु यह उनकी मनघड़न्त कल्पना है, जो सर्वथा निराधार है। इस पक्षपात का स्पष्ट प्रमाण प्रो० मैक्समूलर के Vedic Hymns नामक ग्रन्थ के निम्नलिखित लेख से मिलता है। यहाँ हिरण्यगर्भ सूक्त (ऋ० १०।१२१) का अनुवाद करते हुए जिसमें

"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।"
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद् राजा जगतो बभूव॥

**यो देवेष्वधिदेव एक आसीत् कस्मैदेवाय हविषा विधेम।**
**ततो देवानां समवर्ततासुरेक: कस्मैदेवाय हविषा विधेम॥**

इत्यादि मन्त्रों में अत्यन्त स्पष्ट और प्रबल शब्दों में एकेश्वर-वाद का प्रतिपादन है। जैसा कि स्वयं प्रो० मैक्समूलर ने History of Ancient Sanskrit Literature' में लिखा है।

'I add only one more hymn (Rig 10. 121) in which the idea of one God is expressed with such power and decision that it will make us hesitate before we deny to the Aryans an instinctive monotheism.'

अर्थात् मैं एक और सूक्त (ऋ० १०।१२१) का उल्लेख करना चाहता हूँ जिसमें एक ईश्वर का भाव इतनी प्रबलता और स्पष्टता के साथ प्रकट किया है कि हमें अत्यन्त संकोच करना पड़ेगा पूर्व इसके कि हम आर्यों के एक नैसर्गिक एकेश्वरवाद से इन्कार करें।

इत्यादि शब्दों द्वारा स्वीकार किया था वे टिप्पणी चढ़ाते हैं—

'This is one of the hymns which has always been suspected as modern by European interpreters.
(Vedic Hymns p. 3)

अर्थात् यह उन सूक्तों में से है जिन पर यूरोपीय भाष्यकारों ने सदा नवीन होने का सन्देह किया है।

**'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।'**
ऋ० १०।१२१।१०

इस मन्त्र पर प्रो० मैक्समूलर टिप्पणी चढ़ाते हैं—

"This last verse is to my mind the most suspicious of all."
(p. 4)

अर्थात् यह अन्तिम मन्त्र जिसमें परमेश्वर को सम्बोधन करते हुए कहा गया है कि तुम्हें छोड़कर अन्य कोई भी इस सारे जगत् में व्यापक और इसका स्वामी नहीं है, मेरी सम्पति में सबसे अधिक संदेहास्पद है।

यह सन्देह इसलिए किया गया है कि ईसाइयत के पक्षपात के कारण, प्रबल प्रमाण होते हुए भी, ये लोग इस बात को मानने में संकोच करते हैं, और इसके लिए उद्यत नहीं होते कि वेदों में एकेश्वरवाद की उच्च शिक्षा पाई जाती है।

ऋ० ६।२२।१ में कितनी स्पष्टता से एक सर्वव्यापक सर्वज्ञ परमेश्वर की स्तुति और उपासना का विधान है इसको देखिए—

**य एक इद् हव्यश्चर्षणीनाम् इन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।**
**यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान् सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥**

अर्थात् (यः) जो (इन्द्रः) परमेश्वर (चर्षणीनाम्) सब मनुष्यों का (एकः इत्) एक ही (हव्यः) पूजनीय है, (तम्) उसको (आभि-गीर्भिः) इन वाणियों से (अभी अर्च) चारों ओर से प्रेम पूर्वक पूजा कर। (यः) जो (वृषभः) सुख शान्ति आनन्दवर्षक (वृष्ण्या-बान्) सर्वशक्तिमान् (सत्यः) सत्य स्वरूप (सत्वा पुरुमायः सहस्वान् पत्यते) अत्यधिक बुद्धिशाली-सर्वज्ञ तथा सब प्रकार के बल से सम्पन्न होने के कारण सबको पराजित करने वाला सारे जगत् का स्वामी है। वही परमेश्वर एकमात्र पूजनीय है।

इस प्रकार मन्त्र में परमेश्वर को सर्वव्यापक, सर्वज्ञ सर्वशक्ति-मान् सारे जगत् का स्वामी बताते हुए उसकी मानस पूजा का विधान किया गया है। इससे स्पष्ट एकेश्वरवाद का प्रतिपादन क्या कहीं हो सकता है इसे निष्पक्ष पाठक विचारें।

ऋ० १०।८२ में एकेश्वरवाद का स्पष्ट प्रतिपादन सभी मन्त्रों में विश्वकर्मा अथवा जगत्कर्ता के नाम से परमेश्वर का स्मरण

करते हुए किया गया है। ७ मन्त्रों के इस छोटे से सूक्त में ३ वार 'एकः' शब्द का परमेश्वर के लिए प्रयोग हुआ है। ( म० २, ३, ६ में)।

म० २ में विश्वकर्मा अर्थात जगत्कर्ता परमेश्वर के गुणों का निम्न प्रकार वर्णन करते हुए उसके एक होने का प्रतिपादन है।

**विश्वकर्मा विमना आद् विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्।**
**तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः॥**

ऋ० १०।८२।२

इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि वह ( विश्वकर्मा ) जगत्कर्ता परमेश्वर (विमना आत् विहायाः) विविध मनों का स्वामी, आकाश के तुल्य व्यापक (धाता) संसार का धारण करने वाला, (विधाता) विशेष रूप से सूर्य चन्द्र तथा लोक-लोकान्तरों का धारण और पोषण करने वाला, ( परमः अत्यन्त उत्कृष्ट, उत) और संदृक्) सर्वज्ञ है, (यत्र) जिस परमेश्वर के विषय में विद्वान् (आहुः) कहते हैं कि (सप्तऋषीन् परे) वह सात इन्द्रियों से परे (एकम्) एक ही है, और (यत्र) जिस परमेश्वर के आश्रय में (तेषाम् उन इन्द्रियादि के (इष्टानि अभिलषित सब भोग्य पदार्थ ( इषा) उस प्रभु की प्रेरक शक्ति से (संमदन्ति भली प्रकार हर्ष के कारण बनते हैं।

यहां ईश्वर के जगत्कर्ता धर्ता और सर्वज्ञ होने का प्रतिपादन करते हुए उसे इन्द्रियातीत और एक ही बताया है। यह अति स्पष्ट है जिसमें सन्देह का अणु मात्र भी कारण नहीं।

इस सूक्त का म० ३ तो इस प्रकरण में अत्यधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है जिसमें परमेश्वर को एक और देवों के सब नामों को धारण करने वाला बताया गया है। मन्त्र इस प्रकार है:—

**यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।**
**यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥**

ऋ० १०।८२।३, यजु० १७।२७, अथर्व० २।२।३

अर्थात् (यः नः पिता) जो परमेश्वर हमारा पालक है (जनिता) उत्पादक है, और (यः जो (विधाता) विशेष रूप से हमारा धारण करने वाला, और (विश्वा धामानि) सब स्थानों लोकों और भुवनानि उत्पन्न पदार्थों को (वेद) जानता है, (यः देवाना नामधा एकः एव) जो सब देवों इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम इत्यादि के नाम को प्रधानतया धारण करने वाला एक ही देव है (तम्) उस (संप्रश्नम्) अच्छी प्रकार से जानने योग्य परमेश्वर की ओर ही (अन्य भुवना) अन्य सब लोक और प्राणी (यन्ति) गति कर रहे हैं।

यहाँ परमेश्वर को पालक, उत्पादक, पिता, सर्वज्ञ, सर्वधारक बताते हुए स्पष्ट कहा है कि वह एक ही है जिसके अनेक देवताओं के अनेक नाम हैं अर्थात् अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, रुद्रादि नाम प्रधानतया उस एक गुणसमुद्र परमेश्वर के हैं, गौण रूप से अन्यों के हैं। इससे बढ़कर एकेश्वरवाद का प्रतिपादन और अनेकश्वरवाद का निराकरण और क्या हो सकता है?

उसी सूक्त के म० ६ में पुनः एकेश्वरवाद का स्पष्ट प्रतिपादन निम्न शब्दों में किया गया है जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है :—

**तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।**
**अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥**

इस मन्त्र के पूर्वार्ध में प्रकृति और उनके परमाणुओं को सबसे पूर्व धारण करने वाला वही एक परमेश्वर है यह कथन कर, उत्तरार्ध में बताया है कि इस अज-प्रकृति, सत्त्व या प्रधान की (नाभा) नाभि में (एकम्) एक ब्रह्मतत्त्व ही (अधि अर्पितम)

ऊपर अधिष्ठाता रूप में विराजमान है, ( यस्मिन् ) जिसके आधार पर ( विश्वानि भुवनानि तस्थुः ) सब लोक स्थित हैं—जो सारे जगत् का संचालक और अध्यक्ष है। इस प्रकार न केवल एकेश्वर-वाद का इस मन्त्र में प्रतिपादन है किन्तु अज के नाम से प्रकृति-तत्त्व का, 'और यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे' अर्थात् जिसके साथ सत्यनिष्ठ सब ज्ञानी अपने को उपासना द्वारा संयुक्त करते हैं यह कहकर पृथक् आत्माओं की सत्ता का निर्देश करके अद्वैतवाद का भी निराकरण किया गया है। ब्रह्म, जीव और प्रकृति की सत्ता मन्त्र के शब्दों में स्पष्ट सिद्ध होती है।

**'एक सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः।'**

इस ऋ० १।१६४।४६ के एकेश्वर प्रतिपादक वचन को मैं इस लेख में पहले उद्धृत कर चुका हूँ। उसी के समान वचन ऋ० १०। ११४।५ में भी है जहाँ कहा है:—

**'सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।'**

अर्थात् ( कवयः ) क्रान्तदर्शी तत्वज्ञानी लोग, ( सुपर्णम् ) सुन्दर कर्म करने वाले परमेश्वर को, ( एकं सन्तम् ) एक होते हुए भी ( वचोभिः ) वैदिक वचनों से ( बहुधा कल्पयन्ति ) अनेक रूपों में—गुणसूचक अनेक नामों के द्वारा वर्णित करते हैं। अर्थात् इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि इत्यादि अनेक नामों से उसी एक परमेश्वर का ही ज्ञानी लोग वर्णन करते हैं। काव्यमयी भाषा में भी उसी का अनेक कल्पनाओं द्वारा सर्वसाधारण को बोध देने के लिए प्रतिपादन करते हैं।

ऐसे स्पष्ट मन्त्रों के विषय में टालने का एक प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने निकाल रक्खा है कि यह मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल का है जो पीछे से बनाया गया। वस्तुतः यह भी एक मनघड़न्त कल्पना है जिसका **"वेदों का यथार्थ स्वरूप"** नामक पुस्तक में मैंने

सप्रमाण निराकरण किया है। तथापि अन्य मंडलों में से कुछ और स्पष्ट प्रमाण देने में कोई हानि नहीं।

ऋ० ८।२५।१६ में मन्त्र आता है :—

**अयम् एक इत्था पुरूरु चष्टे वि विश्पतिः।**
**तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ॥**

अर्थात् ( अयम् ) यह (विश्पतिः) प्रजाओं का स्वामी ( एकः) एक ही है (इत्था इस प्रकार निश्चय से वह एक ही संसार का स्वामी, ( पुरु उरु विचष्टे ) सब प्रजाओं का ठीक-ठीक निरीक्षण करता है—सब कुछ जानता है। हम ( वः ) तुम प्रजाओं के कल्याण के लिए ( तस्य व्रतानि अनुचरामसि ) उसके व्रतों का अनुसरण करते हैं - उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं। यहाँ भी स्पष्टतया परमेश्वर को एक और सारी प्रजाओं का स्वामी बताते हुए उसकी आज्ञा पालन का आदेश है।

ऋ० ८।१।२७ में भी परमेश्वर को एक बताते हुए उसके गुणों का वर्णन इन शब्दों में किया गया है :—

य एको अस्ति दंसना महां उग्रो अभि व्रतैः। ऋ० ८।१।२७

अर्थात् जो परमेश्वर एक, अत्यन्त आश्चर्यजनक, महान् और अपने व्रतों के कारण अति तेजस्वी और दुष्टों के लिए भयंकर है उसी का ध्यान सब को करना चाहिए।

ऋ० १।१००।७ में भी —

**'स विश्वस्य करुणस्येश एकः ।**

यह कहकर परमेश्वर को सब करुणापूर्ण शुभ कर्मों का एक मात्र स्वामी बताया गया है। ऋ० १।७।९ का निम्न मन्त्र भी परमेश्वर को सारे संसार का और सब मनुष्यों का एक ही सम्राट् घोषित करता हुआ एकेश्वरवाद का प्रबल समर्थक है।

**य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पंच क्षितीनाम् ।।**

अर्थात् (यः) जो (इन्द्रः) परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा (चर्षणीनाम्, पंचक्षितीनाम्) सब मनुष्यों का जो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य शूद्र इन विभागों में बँटे हुए हैं और (वसूनाम्) सारे ऐश्वर्यों का स्वामी है, उसी की उपासना करो। यह ऋग्वेद के दशम मण्डल का नहीं जिसको कई पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी मनघड़न्त कल्पना से पीछे की रचना बताने का यत्न किया है किन्तु प्रथम मण्डल का मन्त्र है। इसी प्रथम मण्डल के सूक्त ५४ का ४ वां मन्त्र भी परमेश्वर को एक और अनुपम बताते हुए कितनी स्पष्टता से एकेश्वरवाद का विशुद्ध रूप में प्रतिपादन करता है: -

**न यस्य द्यावापृथ्वी अनुव्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।**
**नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ।।**

ऋ० १।५४।१४

अर्थात् जिस परमेश्वर के आकाश और पृथिवी, समुद्र और अन्य लोक-लोकान्तर अन्त नहीं पा सकते वह सब में ओत प्रोत है। मेघ बिजली आदि भी गर्जते या वृष्टि करते हुए उसकी महिमा को सूचित करते किन्तु उसका अन्त पाने में असमर्थ हैं। ऐसा वह परमेश्वर ( एकः ) एक ही है। उसने ( आनुषक् ) सब में व्याप्त होकर (अन्यत्) अपने से भिन्न इस (विश्वम्) संसार को (चकृषे) बनाया है।

इससे न केवल एकेश्वरवाद का स्पष्ट प्रतिपादन बल्कि अद्वैतवाद का स्पष्ट निषेध भी होता है। क्योंकि अद्वैतवाद के अनुसार तो केवल ब्रह्म ही सत्य है जगत् मिथ्या है।

सामवेद म० ३७२ में बड़ी उत्तमता से परमेश्वर के एकमात्र पूज्य होने का प्रतिपादन है। यही मन्त्र अथर्ववेद में भी है—

**समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद् भूरतिथिर्जनानाम् ।**
**स पूर्व्यो नूतनम् आजिगषीन् तं वर्तनीरनु वावृत एकमित पुरु ॥**

सामवेद म० ३७२, अथर्व० ७।२।१

अर्थात् हे मनुष्यो ! तुम सब सरल भाव और आत्मिक बल के साथ परमेश्वर की ओर—उसका ध्यान-भजन के लिए आओ. जो ( एकः इत् ) एक ही मनुष्यों में अतिथि की तरह पूजनीय अथवा अत सातत्यगमने सर्वव्यापक है । वह सनातन नित्य है और नए उत्पन्न पदार्थों के अन्दर भी व्याप रहा है । ज्ञान, कर्म, भक्ति के सब मार्ग उसकी ओर जाते हैं । वह निश्चय से एक ही है ।

इससे स्पष्ट वैदिक एकेश्वरवाद का प्रतिपादन हो रहा है । तथापि आश्चर्य की बात है कि प्रो० मैक्समूलर आदि कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों में विशुद्ध एकेश्वरवाद ( (Monotheism ) के स्थान पर Henotheism वा उपास्यश्रेष्ठतावाद का प्रतिपादन किया है । उनका कथन यह है कि वैदिक ऋषि अनेकेश्वरवादी थे किन्तु वे जिस देव की स्तुति करने लगते थे भाटों की तरह उसी को सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् तथा जगत् का स्वामी मान लेते थे और उस समय अन्य सबको उसके आश्रित तथा उसकी अपेक्षा हीन समझते थे । इस प्रकार वे इन्द्र, मित्र वरुणादि भिन्न-भिन्न देवों की स्तुति करते रहते थे । इस कल्पित वाद का एक तो ऊपर उद्धृत स्पष्ट प्रमाण से निराकरण हो जाता है और दूसरा निम्न प्रकार के सैकड़ों मन्त्रों से जो वेदों में स्थान २ पर पाये जाते हैं उस कल्पना की भित्ति सर्वथा चकनाचूर हो जाती है जिसमें वरुण मित्र, इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, महादेव इत्यादि को अभिन्न वा एक बताया गया है यथा—

**त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः ।**
**त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या ॥**

( ऋ० २।१।३ )

**त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्य।**
**त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः॥**

(ऋ० २।१।४)

इन मन्त्रों में परमात्मा को अग्नि (ज्ञान स्वरूप नेता) के नाम से सम्बोधित करते हुए कहा है कि तू ही इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा और ब्रह्मणस्पति है। तू ही वरुण, मित्र, अर्यमा व्यापक होने से विष्णु, सबसे बड़ा होने से ब्रह्मा, ज्ञान का स्वामी होने से ब्रह्मणस्पति, सर्वोत्तम व अज्ञानान्धकार निवारक होने से वरुण, सब का स्नेही होने से मित्र, और न्यायकारी होने से अर्यमा के नाम से याद किया जाता है।

**सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः।**
**सोऽग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः॥** अथर्व० १३।४।४।५

इस मन्त्र में भी कहा गया है कि वही परमात्मा अर्यमा, वरुण, रुद्र, महादेव, अग्नि, सूर्य, महायम इत्यादि नामों से पुकारा जाता है।

वह एक परमात्मा ही नमस्कार करने के योग्य है इस बात को

**"दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिः एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः।**
**तं त्वा यामि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम्॥**

अथर्व० २।२।१

**मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिः, एक एव नमस्यः सुशेवाः॥**

अथर्व० २।२।२

**न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।**
**न पंचमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते।**
**नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते स एष एक एकवृदेक एव॥**

अथर्व० १३।४।२०

इत्यादि में भी स्पष्टतया बताया गया है—

**'एक एव नमस्यः विक्षु ईड्यः' 'एक एव नमस्यः सुशेवाः।'**

ये शब्द स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं जिन से जीवेश्वर भेद भी स्पष्ट है। इनमें कहा गया है कि वह 'एकः एव नमस्यः' एक परमात्मा ही नमस्कार के योग्य है। वह 'विक्षुईड्यः' सारी प्रजाओं में पूजनीय है क्योंकि वह 'सुशेवाः' अर्थात् उत्तम सुखदाता है। वही 'भुवनस्य पतिः'– सारे संसार का स्वामी और रक्षक है। वह परमात्मा एक ही है– दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस परमेश्वर नहीं। वह ( एकः ) एक है, (एकवृत्) एक होकर वह सर्वव्यापक है, ( एकः एव ) वह एक ही है। इससे अधिक स्पष्ट एकेश्वरवाद का प्रतिपादन और क्या हो सकता है ?

## वैदिक ईश्वर का स्वरूप

यदि वैदिक ईश्वरवाद के विषय में कोई एक ही मन्त्र उद्धृत करना हो जिसमें सागर को गागर में भर दिया गया है तो वह निःसन्देह यजु० ४०।८ है जहाँ—

**स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर ँ शुद्धमपापविद्धम्।**
**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥**

इन शब्दों द्वारा बताया गया है कि ज्ञानी उस परमेश्वर को प्राप्त करता है जो सर्वशक्तिमय, सर्वथा शरीररहित, नसनाड़ी के बन्धन से रहित, निराकार, निर्विकार, शुद्ध, पवित्र तथा सर्वथा पाप-रहित है। वह सर्वज्ञ, मन का भी साक्षी, सर्वव्यापक स्वयम्भू है जो

( शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ) अनादि जीवरूप प्रजाओं के कल्याणार्थ ( याथातथ्यतः ) यथार्थ रूप से सब पदार्थों को बनाता और वेद द्वारा उनका उपदेश करता है। यहां 'शाश्वतीभ्यः समाभ्यः' इन शब्दों से अनादि नित्य जीवों की सत्ता और 'याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात्' से जगत् की यथार्थता ( न कि "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" इस अद्वैत-वेदान्त सिद्धान्तानुसार उसका मिथ्यात्व ) भी स्पष्ट है।

## जीवेश्वर भेद का अत्यन्त स्पष्ट प्रतिपादन

वेदों में जीवेश्वर भेद का स्पष्ट प्रतिपादन सैकड़ों मन्त्रों में है। क्योंकि इस बात को सभी जानते हैं कि वेदों में अधिकतर मन्त्र प्रार्थना के हैं और प्रार्थना उपास्य-उपासक, सेव्य-सेवक, पिता-पुत्र आदि का भेद मान कर ही सम्भव है। तथापि लेख के विस्तारभय से अभी निम्नलिखित अति स्पष्ट मन्त्रों का निर्देश मात्र ही पर्याप्त है जिनके अर्थ के विषय में भी सन्देह का अवकाश नहीं यदि निष्पक्ष-पात दृष्टि से विचार किया जाए।

**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।**
**तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥**

ऋ० १। ६४।२०

इस मन्त्र में जीवात्मा और परमात्मा की दो पक्षियों से उपमा देते हुए, जो दोनों चेतन और नित्य होने के कारण सहयोगी मित्र के समान होते हुए, नित्यता की दृष्टि से समान प्रकृति-रूप-वृक्ष पर बैठते हैं यह कहा है कि ( तयोः ) उन दोनों में से एक कर्मानुसार

( स्वादु पिप्पलम् ) स्वादु वा अस्वादु फल का भोग करता है, और ( अन्यः ) दूसरा कर्मफल का भोग न करता हुआ ( अभि चाकशीति ) सर्वज्ञ साक्षी बनकर जीवकृत कर्मों को चारों ओर से देखता है। इस प्रकार मन्त्र के शब्दों से जीवात्मा और परमात्मा का भेद स्पष्ट है।

स्वामी आत्मानन्द नामक प्रसिद्ध अद्वैतवादी विद्वान् ने भी 'अस्यवामीय सूक्त' ( ऋ० १।१६४ ) की व्याख्या करते हुए इसी जीवात्म-परमात्म-भेद परक अर्थ को स्वीकार किया है यद्यपि 'अविद्यासिद्धं जीवम् अनूद्य' इत्यादि शब्द उन्होंने अपनी ओर से जोड़ लिये हैं जो अप्रामाणिक हैं। मन्त्र का भाष्य करते हुए वे लिखते हैं :—

**"अतो ब्रह्मविद्यैवाश्रयणीया। सा चाविद्यासिद्धं जीवमनूद्य तत्पदार्थप्रतिपादनममुमर्थमभिप्रेत्य जीवपरमात्मानावाह। द्वौ साधून् अभ्युदयानःश्रेयसपक्षान् बिभ्रतौ जीवपरमात्मानौ ( सयुजा ) अन्योन्यं ( सखाया ) परस्परोपकारिणौ समानम् एकं ( वृक्ष ) व्रश्चनोनं देहं ( परिषस्वजाते ) परित आलिङ्ग्य तिष्ठतः। तयोर्मध्ये एको जीवः पिप्पलफ़लसमं बहुदोषयुक्तमपि कर्मफलं स्वादुकृत्वा अत्ति, ( अन्यः ) परः परमात्मा ( अनश्नन् ) अभुञ्जानोऽपि अभितः अत्यर्थं प्रकाशते। कल्पस्तु जीवः परश्च प्रतिपादनोयः, जीवः परात्मेति विवक्तुकामैः। एकस्तयोः कमफलं तु भु क्ते, चकाशतेऽन्योऽनशनः परात्मा।"**

**( स्वा आत्मानन्दकृत अस्यवामीय सूक्त भाष्य पृ २८)**

श्री सायणाचार्य ने भी शब्दार्थ लगभग उपर्युक्त प्रकार करते

हुए अद्वैतवाद के पक्षपातवश निम्न टिप्पणी दे दी है जो सर्वथा अमान्य है क्योंकि मन्त्र के शब्दों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। वे लिखते हैं -

**"अयं मन्त्रः औपाधिकभेदं वास्तवाभेदं चापेक्ष्य प्रवृत्तः। ......अनेन वास्तवभेदोऽपि निरस्तः। न च जीवस्य वस्तुत ईश्वरत्वे कथं जीवबुद्ध्या संसारशोकाविति वाच्यं तयोर्मोहकृतत्वात्। ...... तस्मात् वस्तुत एक एव, भेदस्तु मोहकृत इति प्रसिद्धम्। अनुभवदशायां लौकिकबुद्ध्या भेदमभ्युपेत्योच्यते 'तयोरन्य' इति। तस्मादवास्तवभेदमुपजीव्य 'तयोरन्य' इत्युक्तम्।" इत्यादि।**

अर्थात् इस मन्त्र में औपाधिक भेद किन्तु वस्तुतः अभेद को मानकर 'तयोः अन्य' इत्यादि कहा है। यदि जीव वास्तव में ईश्वर है तो संसार और शोक इत्यादि क्यों दिखाई देते हैं इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यह सब मोह के कारण होता है, वास्तव में जीव ईश्वर में कोई भेद नहीं। कल्पित लौकिक भेद मानकर 'तयोरन्यः' ऐसा मन्त्र में कहा गया है—

मुण्डकोपनिषद् में उपर्युक्त वेद मन्त्र को उद्धृत करके इसकी व्याख्यारूप में जो वचन दिया गया है वह भी इस प्रसङ्ग में उल्लेखनीय है—

**समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।**
**जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशम् अस्यमहिमानमिति वीतशोकः॥**

**मुण्डक उपनि० ३।२**

अर्थात् अनादि नित्य होने से अपने समान प्रकृति-रूप-वृक्ष में फंसा हुआ जीव शरीर इंद्रिय मन आदि पर अपने स्वामित्व को

खोकर मोह अज्ञानवश शोक करने लगता है। किन्तु जब वह अपने से भिन्न ( अन्यम् ) ( जुष्टम् ) अपने आनन्दमय प्रेमी स्वामी ईश्वर के दर्शन करता है और उसकी महिमा का चिन्तन करता है तब वह शोकरहित हो जाता है।

यहाँ भी जीवेश्वर भेद का स्पष्ट प्रतिपादन है यद्यपि श्री शङ्कराचार्य जी आदि ने उसे अवास्तविक बताने का प्रयत्न किया है।

[२] निम्न ऋग्वेद १०।८२।७ के मन्त्र में जीवेश्वर भेद का अति स्पष्ट प्रतिपादन है—

**न तं विदाथ य इमा जजानान्यद् युष्माकमन्तरं बभूव।**
**नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥**

अर्थात् हे जीवो ! तुम उस परमात्मा को नहीं जानते जिसने इन सब पदार्थों को उत्पन्न किया है। वह ब्रह्म तुम जीवों से ( अन्यत् ) भिन्न, किन्तु साथ ही ( युष्माकम् अन्तरं बभूव ) तुम्हारे अन्दर विद्यमान है। तुम अज्ञानान्धकार से आवृत, स्वार्थी तथा कपटी दम्भी होने के कारण उस सर्वव्यापक ब्रह्म को नहीं जानते ऐसा मन्त्र के उत्तरार्ध में कहा गया है। इस प्रकार परमेश्वर का जीवों से और सांसारिक पदार्थों से ( जिनका वह परमेश्वर उत्पादक है ) भेद मन्त्र में स्पष्टतया निरूपित किया है। यही मन्त्र यजुर्वेद १७।३१ में भी पाया जाता है। बृहदारण्यकोपनिषद् के—

**"य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्। य आत्मनि तिष्ठन्नन्तरोयमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥"**

इत्यादि वचन इस मन्त्र के व्याख्यान रूप प्रतीत होते हैं जिनमें कहा गया है कि जो परमात्मा आत्मा के अन्दर रहता हुआ भी

आत्मा से भिन्न है, जिसको अज्ञानी-आत्मा नहीं जानता, आत्मा जिसके निवासार्थ मानो शरीर रूप है, जो आत्मा में स्थित होकर सबको वश में रखता है, हे गार्गि ! वह तुम्हारा अन्तर्यामी अविनाशी परम आत्मा है। इस मन्त्र के अर्थ में श्री सायणाचार्य, उव्वट महीधरादि अद्वैतवादी आर्यों को बड़ी खेंचातानी इसको जैसे-तैसे करके अद्वैतवाद समर्थक बताने के लिए करनी पड़ी है।

[३] ऋ० ८।९६।६ का निम्न मन्त्र भी जीव, ईश्वर और प्रकृति तथा प्रकृति से उत्पन्न जगत् के भेद को स्पष्टतया प्रतिपादित करता है।

**तमु ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवरण्यस्मात् ।**
**इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ॥**

इस मन्त्र में कहा गया है कि हम ( तम् उ स्तवाम ) उस ईश्वर की स्तुति करें ( यः इमा जजान ) जिसने इन सब सूर्यादि-पदार्थों को बनाया है, ( विश्वा जातानि अवराणि अस्मात् ) ये उत्पन्न सब पदार्थ इस परमेश्वर की अपेक्षा बहुत ही हीन हैं। ( इन्द्रेण ) आत्मा के द्वारा हम ( मित्रेण दिधिषेम ) सबके सच्चे मित्र परमेश्वर का ध्यान करें, ( नमोभिः गीर्भिः ) नमस्कार युक्त वाणियों से (वृषभम् ) सुखों के वर्षक परमात्मा के ( उपविशेम ) समीप बैठ जायें, उसकी सच्ची उपासना करें। इस मन्त्र द्वारा ब्रह्म, जीव और जगत् का भेद अत्यन्त स्पष्ट है।

[४] ऋ० ८।९५।३ के निम्न मन्त्र में परमेश्वर को, जीवरूप सनातन प्रजाओं का स्वामी बताया गया है जो उनके परस्पर भेद को स्पष्ट सिद्ध करता है।

**त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि**

अर्थात् हे परमेश्वर ! ( त्वं हि ) तू ही निश्चय से (शश्वतीनां प्रजानाम् ) जीवरूप नित्य प्रजाओं का ( पतिः असि ) स्वामी है।

[५] निम्न सुप्रसिद्ध मन्त्र भी जीवेश्वर भेद को अत्यन्त स्पष्टतया प्रमाणित करता है जहां भगवान् से प्रार्थना की गई है कि—

**इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।**

**शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशोमहि ॥**

ऋग्वेद ७।३२।२६, सामवेद म० २५९ ऐन्द्र पर्व

हे ( इन्द्र ) परमेश्वर ( पिता पुत्रेभ्यः यथा ) जिस प्रकार पिता पुत्रों को ज्ञान प्रदान करता है इसी प्रकार तू ( नः ) हमें ( क्रतुम् आभर) उत्तम ज्ञान और बुद्धि दे। हे ( पुरुहूत ) अनेक भक्तों द्वारा पुकारे गये प्रभो ! ( अस्मिन् यामनि ) इस संसार-मार्ग में अथवा यमु-उपरमे चित्तवृत्तियों के निरोध के योगमार्ग में ( नः शिक्ष ) तू हमें शिक्षा दे, जिससे हम (जीवाः ) जीव ( ज्योतिः अशीमहि ) ज्ञान-ज्योति वा ज्योतिःस्वरूप तुझको प्राप्त करें।

श्री सायणाचार्य ने सामवेद संहिता म० २५९ के भाष्य में इस मन्त्र का इतना उत्तम व्याख्यान किया है कि उसे उद्धृत करना उचित और आवश्यक प्रतीत होता है।

निरुक्त के प्रमाण से इन्द्र का अर्थ परमात्मा करते हुए वे लिखते हैं—

**एवंगुणविशिष्ट परमात्मन् ! त्वं ( क्रतुम् ) कर्म स्वविषयज्ञानं वा ( नः ) अस्मभ्यम् ( आभार ) आहर, प्रयच्छेत्यर्थः, तत्र दृष्टान्तः पिता पुत्रेभ्यो यथा लोके विद्यां धनं वा प्रयच्छति तथा (नः) अस्मभ्यं**

विद्यां धनं प्रयच्छ। हे (पुरुहूत) बहुभिराहूतेन्द्र! (यामनि) सर्वैः प्राप्तव्येऽस्मिन् प्रकृते ब्रह्मणि (जीवा वयं) (ज्योतिः परं ज्योतिः (अशीमहि) सेवेमहि ॥

[श्री सायणाचार्यकृत सामवेद संहिताभाष्यं जीवानन्द वि० सा० सम्पादितं कलकत्ता पृ० १३७]

माधव ने अपने सामवेद भाष्य में भी—

त्वद्दत्तया च प्रज्ञया जीवाः—जीवन्तो वयं (ज्योतिः) ज्ञानम् (अशीमहि) प्राप्नुयामेत्यर्थः।

[सामवेद संहिता सभाष्या ऐड्यार पृ० १६०]

इस प्रकार लगभग उसी आशय का भाष्य किया है। मन्त्र के शब्द इतने अधिक स्पष्ट हैं और उनसे जीवों का परमेश्वर से भेद इतना अधिक व्यक्त है कि उससे कोई विद्वान् इन्कार कर ही नहीं सकता।

(६) ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतᳬस्मर।

यजु० अ० ४० का यह मन्त्र भी (जो ईशोपनिषत् में ज्यों का त्यों पाया जाता है) इस प्रसङ्ग में उल्लेखनीय है जहाँ स्पष्ट है कि हे (क्रतो) कर्मशील जीव! तू (ओ३म् स्मर) ओं पदवाच्य सर्वरक्षक परमेश्वर का स्मरण कर, (क्लिबे स्मर) शक्ति की प्राप्ति के लिये परमेश्वर का स्मरण कर और (कृतं स्मर) अपने किये हुए को याद कर—आत्मनिरीक्षण कर। यहाँ भी जीवेश्वर भेद का स्पष्ट प्रतिपादन है ऐसे ही—

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो

विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः
परिष्टुतिः ॥ यजु० ११।४॥

यो नो दाता स नः पिता महां उग्र ईशानकृत् ऋ० ८।५२।५

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिंल्लोका अधिश्रिताः । य ईशे महतो महान् तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥
यजु० २०।३२

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषम् । यजु० ३२।१४

इत्यादि हजारों मन्त्रों को जीवेश्वर भेद दिखाने के लिए उद्धृत किया जा सकता है ।

## कुछ पाश्चात्य विद्वान और वैदिक एकेश्वरवाद

पाश्चात्य विद्वानों में से भी जो २ अपने को विकासवाद और ईसाइयत के पक्षपातपूर्ण मोह से ऊपर उठा चुके हैं उन्होंने वैदिक एकेश्वरवाद को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है । उदाहरणार्थ प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् चार्ल्सकोलमैन ने वैदिक ईश्वरवाद का निम्नलिखित सुन्दर तथा महत्वपूर्ण शब्दों में प्रतिपादन किया है :—

"The Almighty, Infinite Eternal, incomprehensible, self existent Being. He who sees everything though never seen is Brahma—the One Un-known True Being, the Creator, Preserver and Destroyer of the universe. Under such and innumerable other difinitions is the Deity acknowledged in the Vedas."

इस उद्धरण का सारांश यह है कि वेदों में सर्वशक्तिमान्, अनन्त, नित्य, अविज्ञेय, स्वयम्भू सर्वज्ञ, एक सृष्टि का कर्ता-धर्ता और संहर्ता माना गया है।

कौन्ट जान्स जर्ना ( Count Bjarnstjerne ) नामक प्रसिद्ध विद्वान् ने Theologamy of Hindus P. 53 में वेद मन्त्रों के उद्धरण देकर लिखा है :—

"These truly Sublime ideas can not fail to convince us that the Vedas, recognise only One God, who is Almighty Infinite, Eternal Self, existent, the Light and Lord of the universe."

अर्थात् इन उद्धरणों में प्रकाशित भावों से हम निश्चिततया इस परिणाम पर पहुंचे बिना नहीं रह सकते कि वेद एकेश्वरवाद का ही प्रतिपादन करते हैं जो ईश्वर सर्वशक्तिमान्, अनन्त, नित्य, स्वयम्भू और जगत् का प्रकाशक तथा स्वामी है।

जर्मन विद्वान् श्लीगल इत्यादि ने भी इसी भाव को "It can not be denied that the early Indians possessed a knowledege of true God."

( Wisdom of the Ancient Indians )

अर्थात् इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्राचीन आर्यों को सच्चे ईश्वर का ज्ञान प्राप्त था—इत्यादि शब्दों में प्रकट किया।

## एक पारसी विद्वान् का वैदिक एकेश्वरवाद विषयक लेख

फुर्दुंन दादाचान् B. A., L L. B., D. Th. नामक पारसी

विद्वान् ने Philosophy of zoroastrianism and comparative study of Religions नामक उत्तम पुस्तक लिखी है। वे लिखते हैं :—

"The Vedas teach nothing but Mono-theism of the purest kind."

अर्थात् वेद विशुद्ध एकेश्वरवाद की शिक्षा देते हैं।

## एक मुसलमान विद्वान् का महत्त्वपूर्ण लेख

ऐसा ही विचार सर यामिन खाँ नामक मुसलमान विद्वान् ने God, soul and universe in science and Islam, नामक पुस्तक में प्रकट किया है। उसने स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के विषय में लिखा है कि

'Swami Dayanand a man of great learning began to preach the old religion of the Vedas which conceived unity of God." (P. 3)

अर्थात् स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जो बहुत बड़े विद्वान् थे पुराने वैदिक धर्म का प्रचार शुरू किया जिसमें एकेश्वरवाद का प्रतिपादन था।

वैदिक धर्म का ईश्वर के विषय में यह सिद्धांत है कि वह सर्वव्यापक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निराकार, न्यायकारी, दयालु, जगत् का कर्त्ता, धर्ता और संहर्ता है। वह एक ही पूजनीय है। उसके अटल नियम भौतिक और नैतिक जगत् में कार्य कर रहे हैं, जिन्हें वेदों में ऋत और सत्य के नाम से पुकारा गया है।

आजकल विज्ञान का युग है। बहुत से लोग ऐसा समझते हैं कि

वर्तमान विज्ञान ने जहाँ बहुत से अद्भुत आविष्कारों से संसार को चकित कर दिया, वहाँ उसने ईश्वरवाद को भी समाप्त कर दिया है। उनका ऐसा विश्वास है कि सभी बड़े वैज्ञानिक ईश्वरवाद के विरोधी थे, और उन्होंने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि इस संसार का कर्त्ता कोई नहीं; यह संसार अपने आप ही विकासवाद के नियमानुसार बनता और बिगड़ता रहता है। कम्यूनिज्म के नाम से भी प्रायः अनीश्वरवाद का प्रचार रूस में तथा अन्यत्र किया जाता है, जिसका युवकों पर बहुत बुरा प्रभाव होता है, और इससे उनके चरित्र भ्रष्ट होने की भी बहुत अधिक संभावना रहती है। अतः इस लेख में मैं वर्तमान विज्ञान के पिता के नाम से प्रसिद्ध सर आइज़क न्यूटन और अन्य वैज्ञानिकों के ईश्वरवाद विषयक विचार शिक्षित जनता के सम्मुख रखना आवश्यक समझता हूं। आशा है, हमारे देश के शिक्षित इन विचारों का प्रचार करके, दुर्भाग्य वश देश में फैलते हुए निरीश्वरवाद को दूर करने में सहायक होंगे।

**सर न्यूटन का वक्तव्य :**

सबसे पहले मैं वर्तमान विज्ञान के पिता के नाम से प्रसिद्ध सर आइज़क न्यूटन के वाक्यों में स्पष्ट बताना चाहता हूँ कि वे पूर्ण ईश्वर-विश्वासी थे। उन्होंने अपने ज्योतिषशास्त्र विषयक Principia नामक ग्रन्थ में लिखा था कि—

"All this material universe is the handwork of One Omniscient and Omnipotent Creator."

अर्थात् यह सारा भौतिक जगत् एक सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की रचना है।

उसके गुणों का वर्णन करते हुए सर न्यूटन ने लिखा :—

"We are therefore to acknowledge One God, Infinite, Eternal, Omnipresent, Omnipotent the creator of all things, most wise, most just, most good, most holy."

(Quoted from 'The Metaphysical Foundations' by Arthur Burtt S. T. M. P. h. D. P. 282)

अर्थात् हमें एक ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करना होगा, जो अनन्त नित्य, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक है, सर्वशक्तिमान् सृष्टि कर्ता, सबसे अधिक न्यायकारी और सबसे अधिक पवित्र है।

इन शब्दों को पढ़ते हुए किसे आर्यसमाज के द्वितीय नियम का स्मरण नहीं होता, जो निम्न शब्दों में है—

परमेश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

'Optick' नामक अपने ग्रन्थ में भी यह प्रश्न उठा कर कि—

'Whence is it that nature doth nothing in vain and whence arises all that order and beauty which we see in the world."

अर्थात् क्या कारण है कि प्रकृति कोई कार्य व्यर्थ नहीं करती, और संसार में जो व्यवस्था और सौंदर्य देखते हैं, वे कहाँ से आते हैं इत्यादि।

इनका उत्तर देते हुए वैज्ञानिक शिरोमणि न्यूटन ने ठीक ही लिखा है –

"These things being rightly despatched does it not appear from phenomena that there is Superme Being incorporal living, inteligent, Omnipresent, who in infinite space sees the things themselves intimately and thoroughly, perceives them and comprehends them wholly by their immediate presence to himself."

(Opticks by Sir Newton; P. 344)

अर्थात् क्या इन विषयों को ठीक तौर पर समझने पर यह स्पष्ट नहीं प्रतीत होता कि एक निराकार चेतन, बुद्धिमान् सर्वव्यापक है जो सब वस्तुओं को यथार्थ रूप में सम्पूर्णतया देखता और अन्तर्यामी रूप से ठीक-ठीक जानता है।

### सर आलीवर लॉज का कथन :

सर आलीवर लॉज अपने समय के सबसे बड़े वैज्ञानिक और रायल सोसायटी तथा British Association for the advancement of Science के प्रधान थे। उन्होंने एक निबन्ध में लिखा—

"We are deaf and dumb to the infinite grandeur around us unless we have insight to appreciate the whole and so to recognise in the women fabric

of existence, flowing steadily from the loom in an infinite progress towards perfection the evergrowing garment of a transcendent God."

(Is modern Intelligence out growing God ?
by V. T. Sunderland P. 197)

भावार्थ यह है कि हम अपने चारों ओर जो असीम सौन्दर्य पाते हैं, उसके विषय में बहरे और गूंगे रहते हैं जब तक कि हमारे अन्दर समस्त जगत् के महत्त्व को समझने और उसके अन्दर ओत प्रोत सर्वव्यापक परमेश्वर की सत्ता को स्वीकार करने की आन्तरिक दृष्टि व बुद्धि न हो।

**लार्ड केल्विन की स्पष्टोक्ति—**

लार्ड केल्विन ने जो १९ वीं सदी के एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक थे, यह स्पष्ट घोषणा की थी कि—

"Science positively affirms creative Power we are absolutely forced by Science to believe with perfect confidence in a Directive Power, in an influence other than physical or electrical forces."

(Quoted in 'Science and Religion' by Seven men of science. P. 48)

अर्थात् विज्ञान एक सृष्टिकर्ता की सत्ता का स्पष्ट रूप में प्रतिपादन करता है। हमें विज्ञान उस नियामक शक्ति में पूर्ण विश्वास के लिए बाधित करता है, जो भौतिक और वैद्युतिक शक्तियों से

भिन्न है। लुई पैश्चर नामक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक का प्रातःस्मरणीय वाक्य :—

Posterity will one day laugh at the foolishness of the modern materialistic philosophers. The more I study nature the more I stand amazed at the works of the Creator.

अर्थात् आगे आने वाली सन्तति आधुनिक प्रकृति-वादी दार्शनिकों की मूर्खता पर हँसेगी। जितना अधिक मैं प्रकृति का अध्ययन करता हूँ उतना ही मैं परमेश्वर के कार्यों को देख कर आश्चर्य-चकित होता हूं।

**थौमस ऐडिसन के ईश्वर सत्ता समर्थक उद्‌गार:—**

थौमस ऐडिसन नामक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और आविष्कारक ने लिखा था कि :—

"Too many people have got a microscopic idea of the Creator. If they would only study His wonderful works as shown in nature herself and the natural laws of the Universe, they would have a much broader idea of the Great Engineer. Indeed I can almost prove His existence by chemistry. One thing is certain, the Universe is dominated by intelligence. I tell you, no person can be brought into close contact with the mysteries of the nature or make a study of Chemistry, without being convinced that behind all, there is Supreme Intelligence. I am convinced of that. I can perhaps, some time demonstrate the existence of such

intelligence with the certainty of a demonstration in mathematics."

(Is Modern Intelligence Outgrowing God by V. T. Sunderland )

अर्थात् बहुत से मनुष्यों को कर्त्ता के विषय में अणुमात्र ज्ञान है। यदि वे प्रकृति और प्राकृतिक नियमों में उसके अद्‌भुत कार्यों का अनुशीलन करेंगे तो उन्हें उस महान् स्रष्टा ( इंजीनियर ) का अधिक विस्तृत ज्ञान हो सकेगा। वस्तुतः मैं रसायन-विज्ञान द्वारा उस की सत्ता को सिद्ध कर सकता हूं। एक बात निश्चित है कि विश्व में बुद्धि व्याप्त है। मैं तुम्हें बताता हूं कि कोई व्यक्ति प्रकृति के रहस्यों और रसायन-शास्त्र का अध्ययन यह विश्वास धारण किये विना नहीं कर सकता कि इन सबके पीछे एक (परमेश्वर की) सर्वोच्च शक्ति कार्य कर रही है। मैं इस बात को गणित के समान स्पष्टतया प्रदर्शित कर सकता हूँ इत्यादि।

डा० मास्टरमैन, F. R. S., M. A, D. Sc., F. R. S. E. की उक्ति : –

"The more we discover of his Handi work, the more we become assured of His existence." (The Religion of the Scientists, by Drawbridge, M. A., P. 121 )

अर्थात् जितनी भी उस परमेश्वर की रचना की खोज करते हैं, उतना ही उसके अस्तित्व में हमारा विश्वास बढ़ता जाता है।

**डा० मूर की महत्त्वपूर्ण धारणा :—**

डा० बी० मूर०, M. A., D. Sc., F. R. S. ने अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'The Origin and Nature of Life' के पृष्ठ २३ में लिखा है : —

"The ordered beauty of the world and nature suggests an infinite intelligence with powers of action such as no man or other creature possesses."

अर्थात् भौतिक जगत् का व्यवस्थापूर्ण सौंदर्य एक असीम बुद्धि का, जिसके साथ क्रिया शक्ति संयुक्त है, परिचय देता है; जो मनुष्य अथवा अन्य किसी प्राणी में नहीं है।

जगद्विख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टीन (Einstein) का लेख :—

"I believe in God who reveals Himself in the orderly harmony of the Universe. I believe that intelligence is manifested throughout all nature. The basis of all scientific work is the conviction that the world is an ordered and comprehensive entity and not a thing of chance."

(Science and the Idea of God by W. M. Earnest Hacking)

अर्थात् मैं उस ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखता हूं, जो अपने को जगत् की व्यवस्थित समता के रूप में प्रकट कर रहा है। मैं यह विश्वास रखता हूँ कि सारी प्रकृति के अन्दर एक बुद्धिमत्ता प्रकट हो रही है। सारे वैज्ञानिक कार्य का आधार यह विश्वास ही है कि संसार एक व्यवस्थित सर्वांगपूर्ण सत्ता है, न कि आकस्मिक वस्तु।

इसी प्रकार The Supreme intelligence in and above nature विषयक भाषणदाता प्रो० फ्लेमिंग, M. A., D. Sc, F. R. S. (जिनका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ईश्वर सत्ता का प्रबल समर्थक भाषण 'Science and Religion by seven Men of Science, P. 58 में छपा है) Human Destiny के लेखक मोयल कौमुटे तथा अन्य अनेक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों के ईश्वर-वाद-समर्थक उद्धरणों को दिया जा सकता है, किन्तु लेख-विस्तार-

भय से ऐसा करना सम्भव नहीं। कहीं यह न समझा जाए कि कुछ थोड़े से वैज्ञानिकों का ऐसा मत है, इसलिए ग्रन्त में डा० पाल केरस कृत सुप्रसिद्ध पुस्तक 'The Religion of Science' अर्थात् 'विज्ञान का धर्म' से यह उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है :

"The Religion of Science is not atheistic, but theistic God determines the laws of any possible kind of nature. God is that which determines the shape of nature and directs the course of energy."

(The Religion of Science by Dr. Paul Carus.)

अर्थात् विज्ञान का धर्म नास्तिक वा निरीश्वरवादी नहीं, अपितु ईश्वरवादी है। परमेश्वर प्रकृति के नियमों और रूप का नियामक है, और वही शक्ति के प्रकार का प्रेरक है।

जो वैज्ञानिक भौतिक विकासवाद को मानते हैं, वे भी अब प्राय: ईश्वर की सत्ता से इन्कार नहीं करते, बल्कि हेनरी ड्रमण्ड नामक प्रसिद्ध वैज्ञानिक के शब्दों में कहते हैं कि 'Evolution shows God everywhere.' ('Is Modern Intelligence Outgrowing God P. 200) अर्थात् 'विकास सर्वत्र ईश्वर को प्रदर्शित वा सिद्ध करता है।' अत: वैज्ञानिकों का विरोध मनुष्य के शरीर धारी सीमित, अल्पज्ञ ईश्वर की कल्पना (Anthropomorphism) से है, न कि वैदिक ईश्वरवाद से।

प्रो० फ्लेमिंग M. A., D. Sc., F. R. S. ने The Supreme Intelligence in and above nature (प्रकृत्ति के अन्दर और ऊपर सर्वज्ञ की सत्ता) नवम्बर १९१४ ईस्वी में लण्डन में मनाये विज्ञान सप्ताह (Science week) में युक्तियुक्त व्याख्यान देते हुए उपसंहार इन महत्त्वपूर्ण शब्दों में किया—

'What Science Yields !

"We can say that scientific study most certa-

inly shows us the presence in this physical universe of an order, stability, Directive Power and intelligibility. These qualities are not spontaneously produced. They do not come by choice. This universe is not merely a thing. It is a thought and thought implies and necessitates a thinker. Hence there is in this Universe a Supreme. Thinker or Intelligence of which our own intelligence is but a faint copy." ("Science and Religion by Seven men of Science" P. 48)

अर्थात् विज्ञान हमें क्या बतलाता है ? हम कह सकते हैं कि वैज्ञानिक अनुशीलनपूर्ण निश्चय के साथ इस भौतिक संसार में क्रम व व्यवस्था, स्थिरता, संचालक शक्ति और बुद्धिगम्यता को प्रदर्शित करता है। वे गुण स्वयं नहीं आ सकते। वे स्वयं चुनाव वा पसन्द द्वारा भी नहीं आते। यह संसार एक विचार का परिणाम है। इस लिये संसार में एक सर्वोत्कृष्ट महान् विचारक व बुद्धिमान् है जिसके सामने हमारी अपनी बुद्धि एक अस्पष्ट छाया सी है।

कितने स्पष्ट शब्दों में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० फ्लेमिंग ने विज्ञान द्वारा ईश्वर के अस्तित्व का समर्थन किया है पाठक इतने से ही समझ सकते हैं।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० क्रेसी मौरीसन ने जो न्यूयार्क ऐकेदमी ऑफ़ साइन्स (विज्ञान संस्थान, के अध्यक्ष थे रीडर्स डाइजेस्ट (Reader's Digest) नामक मासिक पत्रिका के लिये (जिसकी १३ भाषाओं में प्रतिमास २० करोड़ के लगभग प्रतियां बिकती हैं। "Seven Reasons why a Scientist Believes in God' अर्थात् ७ कारण कि क्यों एक वैज्ञानिक ईश्वर में विश्वास करता है लिखा

था जो प्रथम वार रीडर्स डाइजेस्ट के जनवरी १९४८ के अङ्क में प्रकाशित हुआ था। औक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में गणित शास्त्र के प्रोफ़ेसर कौल्सन F. R. S. आदि के विशेष अनुरोध से उसे रीडर्स डाइजेस्ट के नवम्बर १९६० के अङ्क में पुन: प्रकाशित किया गया था। इस महत्त्वपूर्ण लेख का प्रारम्भिक परिच्छेद निम्नलिखित है:—

"We are still in the dawn of the scientific age and every increase of light reveals more brightly the handiwork of an intelligent creator. In the 90 years since Darwin we have made stupendous discoveries, with a spirit of scientific humility and of faith grounded in knowledge we are approaching even nearer to an awareness of God."

(Seven Reasons why a Scientist Believes in God by A. Cressy Morrison Former President of the New York Academy of Sciences Reader's Digest Nov. 1960 )

अर्थात् हम अभी वैज्ञानिक युग की उषा में हैं और प्रत्येक प्रकाश वा ज्ञान की वृद्धि एक बुद्धिमान् जगत्कर्ता की कृति को और अधिक स्पष्टता से प्रकट करती है। डार्विन के पश्चात् के इन ९० वर्षों में हम ने महत्त्वपूर्ण आविष्कार किये हैं। वैज्ञानिक नम्रता और विश्वास की भावना के साथ जो ज्ञान पर आधारित हो, हम ईश्वर की सत्ता को अनुभूति के अधिकाधिक समीप पहुंच रहे हैं। इसके पश्चात् उन्होंने ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने के लिये ७ प्रबल कारणों का निर्देश किया है जिन का हम विस्तार भय से अभी उल्लेख नहीं कर सकते। इतने से भी वैदिक ईश्वरवाद के लिए सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों का समर्थन स्पष्ट है जिस के प्रचार की बड़ी भारी आवश्यकता है।

# वैदिक विभूति

● कविवर श्री पं० हरिशंकर शर्मा

है वैदिकता का गौरव परम पुरातन,
वैदिक शिक्षा अति पुण्यमयी अति पावन।
ऋषि-मुनि वेदामृत-पान किया करते थे,
वेदों पर प्यारे प्राण दिया करते थे।
उस दिव्य ज्योति का ज्ञान-उजाला करिए,
वेदों की विमल विभूति विश्व में भरिए।

वर वेद पूज्य कल्याण त्राण-दाता हैं,
सद् ज्ञान-भानु प्रेरक पथ-निर्माता हैं,
जब तक वेदों की ज्योति जगी जीवन में,
शुचिता-समता थी, ममता रही न मन में,
वेदों के लिये जियो, वेदों पर मरिए,
वेदों की विमल विभूति विश्व में भरिए।

जो युक्ति, तर्क, दर्शन से शुद्ध हुआ है,
वैदिक का बल पाय प्रबुद्ध हुआ है,
जो नित्य सत्य सिद्धान्त रूप में भाया,
ज्ञानी-गुणियों ने धर्म्म-रूप अपनाया,
उसको जीवन में धार विनम्र विचरिए,
वेदों की विमल विभूति विश्व में भरिए।

जो तत्व अभ्युदय निःश्रेयस् साधक है,
जो व्यष्टि-समष्टि परम प्रभु आराधक है,
जिसने 'मानव-मंगल' की ज्योति जगाई,
जो प्राणीमात्र के लिये परम सुखदाई,
वह श्रेयस्कर है, सदा उसे अनुसरिए,
वेदों की विमल विभूति विश्व में भरिए।

# आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्य विद्या, और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्याय-कारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिएं।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

## आर्य कुमार सभा किंग्जवे द्वारा प्रकाशित

## प्राप्य साहित्य

| | | मूल्य पैसों में |
|---|---|---|
| विश्व का प्रथम राष्ट्रगीत (पुरस्कृत) | (श्री गणेशदत्तशर्मा) | ५० |
| स्वर्ण-पथ | (ब्र० जगदीश विद्यार्थी) | २५ |
| सत्संग-सुधा | (संकलित) | १५ |
| वैदिक भक्ति-स्तोत्र | (स्व० पं० बुद्धदेव जी मीरपुरी) | ५० |
| गणेश | (श्री रामरतन एडवोकेट) | २५ |
| भारत की महान् आवश्यकता | (श्री काशीराम चावला) | ५० |
| जीवन-यात्रा | (ब्र० जगदीश विद्यार्थी) | ३० |
| गीत-बावनी | (श्री धर्मपाल बी० ए०) | ३५ |
| वेदोक्त विजय यज्ञ | (महात्मा ज्ञानेश्वरानन्द) | ४० |
| वेदों का महत्त्व | (पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड) | ३० |
| ऋषि-विद्रोहियों की अवस्था | (ब्र० इन्द्रदेव मेधार्थी) | ०६ |
| वैदिक ईश्वर वाद और आधुनिक विज्ञान | (धर्म देव विधामार्तण्ड) | ३० |

मुद्रक—मोहन प्रिंटर्स, बाजार सीताराम, दिल्ली-६